प्रतीक और लोकभाषा में जनचेतना: दादूदयाल की वाणी की भाषिक दृष्टि

योगिता पाराशर[1], डॉ. पूजा जोरासिया[2]
[1]*शोधार्थी, कला एवं मानविकी संकाय, कैरियर प्वाइंट विश्वविद्यालय, कोटा*
[2]*शोध पर्यवेक्षक, कला एवं मानविकी संकाय, कैरियर प्वाइंट विश्वविद्यालय, कोटा*

शोध सार—**यह शोध-पत्र दादूदयाल की वाणी को प्रतीक और लोकभाषा के माध्यम से जनचेतना के विकास के रूप में विश्लेषित करता है। दादू की भाषा जनसामान्य के जीवन, अनुभव और विचार-जगत से सीधा संबंध स्थापित करती है। उनकी वाणी में प्रयुक्त प्रतीक सरल होते हुए भी गहरे सामाजिक और मानवीय अर्थों को अभिव्यक्त करते हैं। लोकभाषा के प्रयोग से दादू की रचनाएँ सहज रूप में जनमानस तक पहुँचती हैं और प्रभाव उत्पन्न करती हैं। उनकी भाषा भक्ति के साथ सामाजिक जागरूकता और नैतिक चेतना का भाव विकसित करती है। इस प्रकार दादूदयाल की भाषिक दृष्टि जनजीवन की समस्याओं से जुड़कर मानवीय मूल्यों और सामाजिक चेतना को सशक्त रूप में प्रस्तुत करती है।**

मुख्य शब्द—**दादूदयाल, संत-काव्य परंपरा, जनचेतना, लोकभाषा, प्रतीक-प्रयोग, जनसामान्य, मानवीय मूल्य, लोक बोध, सामाजिक चेतना, लोकजीवन**

I. प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में "संत-काव्य की परंपरा" समाज और मनुष्य के अनुभवों से गहराई से जुड़ी रही है। इस परंपरा के संत कवियों ने जीवन, आस्था और आचरण से जुड़े विचारों को सरल और सहज भाषा में कहा है। दादूदयाल इसी परंपरा के प्रमुख कवि हैं, जिनकी वाणी सामान्य लोगों की बोलचाल और समझ से निकली हुई लगती है (रामचन्द्र शुक्ल, 2014)। उनकी भाषा बातचीत की तरह सामने आती है और पाठक को पास बैठकर कही गई बात का एहसास कराती है। इसी कारण दादूदयाल की वाणी आज भी पढ़ी जाती है और उस पर चर्चा होती रहती है (चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी 1964)। संत-साहित्य के विकास में दादू की भूमिका समझना हिंदी साहित्य को व्यापक रूप में समझने में मदद करता है।

दादूदयाल की वाणी में भाषा 'समाज' और 'चेतना' को जोड़ने का माध्यम बन जाती है। उनकी बातों में लोकभाषा, प्रतीक और जीवन के अनुभव एक साथ मिलकर आते हैं, इसलिए उनकी वाणी सामान्य पाठक के लिए भी आसान और असरदार बनती है (निलोचन नारायण चौबे, 1952)। दादू की वाणी जीवन की सच्चाइयों को सीधे और सरल रूप में रखती है। उनके काव्य में व्यक्ति और समाज के रिश्तों की साफ समझ दिखाई देती है, जिससे संत-काव्य को मानवीय स्तर पर व्यापकता मिलती है (केशव प्रसाद सिंह, 1971)। इसी संदर्भ में यह शोध-पत्र उनकी वाणी को भाषा और विचार की दृष्टि से समझने का प्रयास करता है। इसमें

रूपक, प्रतीक, लोकभाषा और जनचेतना को विश्लेषण का केंद्र रखा गया है और समकालीन संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता भी देखी जाएगी।

II. साहित्य समीक्षा

किसी भी शोध कार्य की सुदृढ़ता पूर्ववर्ती अध्ययनों और उपलब्ध साहित्य की गहन समझ पर आधारित होती है। अब तक हुए अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि दादू की वाणी में समाज में विद्यमान असमानताओं और मानवीय संघर्षों की सशक्त अभिव्यक्ति निहित है(रामस्वरूप, 2014)। यह साहित्य समीक्षा इन्हीं विचारों के आलोक में दादूदयाल से संबंधित प्रमुख प्रवृत्तियों को समझने का आधार प्रस्तुत करती है –

- "दादूदयाल और हमारा समय" नन्द किशोर पांडेय, नरेन्द्र मिश्र एवं अमरेन्द्र त्रिपाठी (2024) द्वारा लिखित किताब –

यह कृति दादूदयाल की वाणी को समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषिक संदर्भों में रखकर देखने का प्रयास करती है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि उनकी लोकभाषा और प्रतीक आज भी सामान्य जन से जीवंत संवाद स्थापित करते हैं। अध्ययन में आलोचनात्मक दृष्टि के साथ सामाजिक विश्लेषण को जोड़ा गया है और दादू की भाषा को केवल आध्यात्मिक अभिव्यक्ति न मानकर जनजीवन की चेतना से जोड़कर देखा गया है। पुस्तक यह रेखांकित करती है कि लोकभाषा के सरल शब्द, दैनिक जीवन से ग्रहण किए गए प्रतीक और सहज कथन जनमानस को चिंतन की दिशा प्रदान करते हैं। लेखकों का निष्कर्ष है कि दादूदयाल की वाणी सत्ता, पाखंड और सामाजिक असमानता के विरुद्ध एक सूक्ष्म किंतु प्रभावी प्रतिरोध की भाषा है। यह वाणी अपने ऐतिहासिक समय से आगे बढ़ते हुए समकालीन समाज से भी प्रश्न करती है। भाषिक संरचना और प्रतीक-विश्लेषण को अलग अध्याय में विस्तार नहीं मिला है, फिर भी यह कृति दादू की लोकभाषा और जनचेतना को समझने के लिए एक सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करती है।

- "दादू दयाल" रामस्वरूप (2014) द्वारा लिखित पुस्तक –

यह कृति संत दादूदयाल के जीवन, विचार और वाणी का सुव्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करती है तथा उन्हें भक्ति परंपरा के सामाजिक संदर्भ में समझने का प्रयास करती है। अध्ययन ऐतिहासिक-आलोचनात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें दादू की वाणी को उनके समय की सामाजिक संरचना, धार्मिक रूढ़ियों और जनमानस की मानसिकता से जोड़कर देखा गया है। लेखक दादू की लोकभाषा को जनसंपर्क की सशक्त भाषा मानते हैं। यह भाषा सामान्य मनुष्य के अनुभवों से विकसित होकर व्यापक संवाद स्थापित करती है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि दादूदयाल की वाणी नैतिकता और मानवीय संवेदना पर आधारित सामाजिक चेतना को जाग्रत करती है। प्रतीकात्मक भाषा के गहन भाषिक विश्लेषण पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है, फिर भी यह कृति दादू की लोकभाषा और जनचेतना के मूल स्वरूप को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।

- "दादू दयाल की वाणी, पहला भाग, जीवन-चरित्र सहित" रामकुमार वर्मा (1914) द्वारा संपादित एवं प्रस्तुत कृति –

यह कृति दादूदयाल की वाणी को उनके जीवन-संदर्भ से जोड़ते हुए एक प्रामाणिक आधार ग्रंथ के रूप में प्रस्तुत करती है। पुस्तक संकलन और व्याख्यात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें दादू की वाणी को उनके जीवनानुभव, सामाजिक परिवेश और साधना-पथ

के आलोक में समझा गया है। वर्मा ने लोकभाषा में रचित पदों को यथावत प्रस्तुत कर उनके सहज भाव और जनसंपर्क की शक्ति को सुरक्षित रखा है। जीवन-चरित्र के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दादू की भाषा और प्रतीक निजी अनुभवों से विकसित होकर सामूहिक चेतना का स्वरूप ग्रहण करते हैं। कृति का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि दादूदयाल की वाणी लोकभाषा के माध्यम से समाज में आत्मबोध और नैतिक जागरूकता उत्पन्न करती है। प्रतीकों और भाषिक संरचना का स्वतंत्र विश्लेषण नहीं किया गया है, फिर भी यह ग्रंथ दादू-वाणी की प्रामाणिक पाठ-परंपरा और जनचेतना के अध्ययन के लिए एक मूल एवं महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में स्थापित होता है।

- "दादू काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता" रविन्द्र कुमार सिंह (2005) द्वारा लिखित पुस्तक –

यह किताब दादूदयाल के काव्य को समाज के यथार्थ अनुभवों और मानवीय सरोकारों से जोड़कर देखने का प्रयास करती है। अध्ययन सामाजिक-विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें दादू की वाणी को जाति, पाखंड और धार्मिक संकीर्णताओं के संदर्भ में पढ़ा गया है। लेखक लोकभाषा को जनसंपर्क का सशक्त माध्यम मानते हैं और दिखाते हैं कि दादू के प्रतीक सामान्य जीवन से ग्रहण किए गए हैं। ये प्रतीक सीधे सामाजिक चेतना को स्पर्श करते हैं और व्यापक अर्थ उत्पन्न करते हैं। अध्ययन का निष्कर्ष है कि दादू काव्य अपने समय की सामाजिक विकृतियों पर प्रश्न खड़ा करता है। यह काव्य मानवीय मूल्यों की स्थापना भी करता है। भाषिक संरचना और प्रतीक-तंत्र का व्यवस्थित विश्लेषण सीमित है, फिर भी यह कृति दादू की वाणी की जनचेतना और सामाजिक प्रासंगिकता को समझने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती है।

- "संत दादू दयाल के काव्य में अध्यात्म-तत्त्व" आशा देवी (2003) द्वारा लिखित पुस्तक –

यह पुस्तक दादूदयाल की वाणी में निहित अध्यात्म को अनुभवजन्य और मानवीय धरातल पर समझने का प्रयास करती है। अध्ययन में इसे लोकजीवन से जुड़ी चेतना के रूप में देखा गया है। पाठ-विश्लेषण की पद्धति अपनाते हुए पदों के भावार्थ, जीवन-संदर्भ और साधना-अनुभव को साथ रखकर विवेचना की गई है। लेखिका यह स्पष्ट करती हैं कि दादू का अध्यात्म शब्दाडंबर से मुक्त होकर लोकभाषा के माध्यम से आत्मबोध की प्रक्रिया को सरल बनाता है। पुस्तक के निष्कर्ष में अध्यात्म को सामाजिक चेतना से संबद्ध एक सक्रिय अनुभव माना गया है। इसमें प्रतीक जीवन की साधारण स्थितियों से अर्थ ग्रहण करते हैं और संवादात्मक रूप में आंतरिक परिवर्तन की दिशा देते हैं। प्रतीक-तंत्र और लोकभाषा के भाषिक स्तर पर और विस्तार अपेक्षित है, फिर भी यह अध्ययन दादू-वाणी में अध्यात्म और जनचेतना के संबंध को समझने के लिए उपयोगी आधार प्रदान करता है।

- "श्री दादू-वाणी" स्वामी नारायण (1998) द्वारा संपादित एवं प्रस्तुत कृति –

यह ग्रंथ दादूदयाल की वाणी को मूल पाठ के रूप में प्रस्तुत कर उनके विचार, भाषा और प्रतीक-प्रयोग को समझने का अवसर प्रदान करता है। कृति संकलनात्मक पद्धति पर आधारित है, जिसमें पदों को धार्मिक अनुशासन के अंतर्गत सुरक्षित रखते हुए दादू परंपरा की आस्था-भूमि को स्पष्ट किया गया है। यहाँ वाणी की लोकभाषा अपने स्वाभाविक रूप में उपस्थित है। यह भाषा साधारण शब्दों के माध्यम से गहरे जीवनार्थ अभिव्यक्त करती है। पदों में प्रयुक्त प्रतीक दैनिक अनुभवों से जुड़े हैं और पाठक को आत्मचिंतन की दिशा में प्रेरित करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि

दादू की वाणी अनुभूति-प्रधान होकर जनचेतना को जाग्रत करने वाली भाषा है। इसमें आलोचनात्मक और भाषिक विश्लेषण का अभाव है, फिर भी यह ग्रंथ प्रतीक और लोकभाषा में जनचेतना के अध्ययन के लिए एक मूल एवं अत्यंत उपयोगी पाठ-स्रोत के रूप में महत्त्वपूर्ण है।

1. दादूदयाल की वाणी में लोकभाषा का भाषिक स्वरूप

दादूदयाल की वाणी की सबसे बड़ी विशेषता उसकी 'लोकभाषा' है, जो सीधे आम लोगों के जीवन और अनुभवों से जुड़ी हुई है। उनकी भाषा में कठिन शास्त्रीय शब्द या जटिल बनावट नहीं मिलती (रामकुमार वर्मा, 1914)। इसके स्थान पर सहज, सरल और बोलचाल की भाषा दिखाई देती है। यही भाषा श्रोता को अपने जीवन के बहुत पास महसूस होती है और भावनात्मक जुड़ाव बनाती है। जब दादू "राम-नाम" की बात करते हैं, तो वह किसी कठिन विचार की तरह अभिव्यक्त होने की बजाय जीवन के आधार की तरह सामने आता है। लोकभाषा के कारण यह भाव सहज रूप से मन में उतर जाता है (हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1942)। इसी सरलता को यह पद स्पष्ट करता है –

"राम नाम नहिँ छाडाँ भाई।
प्राण तजौं निकट जिव जाई ॥ टेक ॥"
(दादूदयाल, 1914, पृ. 01, पद संख्या – 01)

इस पद में प्रयुक्त शब्द जनभाषा के हैं, जो आस्था को कठिन सिद्धांत न मानकर जीवन का स्वाभाविक आधार बनाते हैं।

लोकभाषा के माध्यम से दादूदयाल की वाणी मनुष्य के दुख-सुख और मन की स्थिति को भी सहज रूप में व्यक्त करती है। यहाँ भाषा उपदेश देने के बजाय अनुभव साझा करती हुई लगती है (वासुदेव सिंह, 2001)। साधारण शब्द मन पर गहरा असर डालते हैं और व्यवहार को भी दिशा देते हैं। उनकी भाषा रिश्तों, विरह और प्रतीक्षा – जैसे मानवीय अनुभवों को स्वाभाविक रूप में सामने लाती है। पाठक या श्रोता स्वयं को इन भावों से जुड़ा हुआ पाता है। लोकभाषा के कारण यह अनुभूति बनावटी नहीं लगती (चंद्रिका प्रसाद त्रिपाठी 1964)। इसी भावभूमि को यह पद सहज रूप में प्रकट करता है –

"राम कहत जन निर्मल होइ।
राम नाम कहि कुसमल धोइ ॥ ४ ॥"
(दादूदयाल, 1914, पृ. 01, पद संख्या – 02)

इस पद में लोकभाषा आत्मशुद्धि की प्रक्रिया को सरल ढंग से समझाती है, जहाँ धार्मिक भाव सीधे आचरण से जुड़ता है और जनमानस में सहज स्वीकार पाता है (निलोचन नारायण चौबे, 1952)। जिससे आगे प्रतीक-प्रयोग की भाषिक संरचना को समझने की भूमिका तैयार करती है।

III. दादूदयाल की वाणी में प्रतीक-प्रयोग की भाषिक संरचना

दादूदयाल की वाणी में 'प्रतीक' भाषा के भीतर ही जन्म लेते हैं और वे सामान्य जीवन-अनुभव से गहराई से जुड़े रहते हैं। उनके काव्य में प्रतीक किसी दार्शनिक शब्दावली से रूप लेने की बजाय मनुष्य के दैनिक बोध से आकार ग्रहण करते हैं (केशव प्रसाद सिंह, 1971)। हरि-गुण गाने की अवधारणा यहाँ केवल भक्ति की एक क्रिया नहीं रह जाती। यह समय और मृत्यु के भय से मुक्ति का संकेत बन जाती है। इस प्रकार भक्ति जीवन-बोध का रूप ले लेती है। इसी भाव-प्रवाह में यह पद काफ़ी महत्वपूर्ण है –

"दादू रे जन हरि गुण गावो।
कालहि जालहि फेरि दहा रे ॥ ५ ॥"
(दादूदयाल, 1914, पृ. 02, पद संख्या – 03)

इस पद में 'काल' और 'जाल –' जैसे शब्द प्रतीक बनकर मनुष्य की अस्थिर स्थिति को सामने

रखते हैं और वाणी की भाषिक संरचना को 'सहज', 'अर्थपूर्ण' दिशा देते हैं (हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1942)। इसी क्रम में दादूदयाल के प्रतीक मन और साधना के आपसी संबंध को भाषा के माध्यम से स्पष्ट करते हैं। यहाँ प्रतीक किसी जटिल या दार्शनिक व्याख्या की अपेक्षा नहीं करते। वे सुनते ही अपने अर्थ को उद्घाटित कर देते हैं (रामकुमार वर्मा, 1914)। मन को एक दिशा में केंद्रित करने का भाव साधक के प्रत्यक्ष अनुभव से उत्पन्न होता है। वही अनुभूति प्रतीकात्मक रूप ग्रहण कर लेती है। यह भाव इस पद में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होता है –

"वाही सौं मन जोरे राखौ।
नीकै रासि लिये निबहौ रे ॥ ३ ॥"

(दादूदयाल, 1914, पृ. 02, पद संख्या – 03)

इस पद में 'मन जोड़ना' और 'रास निभाना' – जैसे प्रतीक साधना की निरंतरता को सहज भाषा में रखते हैं, जिससे वाणी की संरचना लोक बोध से गहरे रूप में जुड़ जाती है (केशव प्रसाद सिंह, 1971)।

IV. दादूदयाल की वाणी में मूल्यबोध और जन सरोकार

दादूदयाल की वाणी में 'मूल्यबोध' जीवन के सीधे अनुभवों से निकलता है। उनकी वाणी मनुष्य की असहायता और भीतर चल रही खोज को सरल शब्दों में सामने रखती है। वे जीवन को जिम्मेदारी और जागरूकता से जोड़ते हैं (परशुराम चतुर्वेदी, 2013)। भय और अनिश्चितता से घिरे मनुष्य को उनकी वाणी अपने भीतर झाँकने के लिए प्रेरित करती है। यह चेतना जीवन में सतत् सजगता का महत्व बताती है। इसी भाव-भूमि में यह पद काफ़ी महत्वपूर्ण है –

"तिल तिल तुझ को हाणि हात है, जे पल राम बिसारे।
भौ भारी दादू के जिय मैं, कहु कैसे करि डारे ॥ २ ॥"

(दादूदयाल, 1914, पृ. 12, पद संख्या – 26)

यह पद जीवन में सतत सजगता का मूल्य स्थापित करता है और भूल से उपजने वाले भय को मानवीय अनुभव के रूप में सामने रखता है।

दादूदयाल की वाणी का जन-सरोकार सामाजिक दूरी और भावनात्मक अलगाव को भी सामने लाता है। उनके यहाँ अकेलापन केवल व्यक्ति की पीड़ा न रहकर समाज में कमजोर होते संबंधों का संकेत बन जाता है (वासुदेव सिंह, 2001)। यह पीड़ा साधारण जन-मन की साझा अनुभूति बन जाती है। दादू जीवन और मृत्यु के प्रश्न को भी मानवीय मूल्य से जोड़ते हैं। उनके अनुसार मृत्यु भय के साथ-साथ मिलन की आशा है, जो जीवन को और संवेदनशील बनाती है (परशुराम चतुर्वेदी, 2013)। इसी मनः स्थिति को यह पद सहज और प्रभावी रूप में व्यक्त करता है –

"मरणा मीत सुहेला,
बिछुरन खरा दुहेला।
दादू पीव सौं मेला ॥ ५ ॥"

(दादूदयाल, 1914, पृ. 53, पद संख्या – 127)

यह पद जीवन-मूल्यों को प्रेम, मिलन और संवेदना से जोड़ता है और आगे आने वाले अवलोकन में सामाजिक मूल्यबोध और मानवीय दृष्टि की भूमिका को स्वाभाविक रूप से तैयार करता है।

V. दादूदयाल की वाणी में सामाजिक मूल्यबोध और मानवीय दृष्टि

दादूदयाल की वाणी समाज को प्रेम और आपसी सम्मान के भाव से देखने की बात करती है। उनके यहाँ संबंध समाज की स्थिरता और सामूहिक जिम्मेदारी

से जुड़े होते हैं (निलोचन नारायण चौबे, 1952)। दादू मानते हैं कि जब मनुष्य के भीतर प्रेम और संतुलन होता है, तभी समाज में विश्वास बना रहता है। उनकी वाणी सामाजिक जीवन को जोड़ने वाली है और आपसी दूरी को कम करती है। सही संगति और अच्छा आचरण उनके विचारों में विशेष महत्व रखते हैं। मनुष्य का व्यवहार अपने आसपास के लोगों से प्रभावित होता है, इसलिए संत-संग जीवन को सही दिशा देता है (केशव प्रसाद सिंह, 1971)। इन्हीं विचारों के आधार पर दादूदयाल की वाणी में सामाजिक मूल्य और मानवीय दृष्टि को नीचे दी गई तालिका में स्पष्ट किया गया है –

तालिका 01: दादूदयाल की वाणी में सामाजिक मूल्य और मानवीय दृष्टि		
सामाजिक पक्ष	वाणी में अभिव्यक्ति	मानवीय अर्थ
प्रेम	संबंधों में स्थिरता और विश्वास	सामाजिक सौहार्द
संगति	संत-संग का महत्व	संवेदनशील व्यक्तित्व
भ्रम-मुक्त जीवन	आडंबर से दूरी	सामाजिक शांति
आत्मबोध	भीतर की जागरूकता	सामूहिक दुख में कमी

[स्रोत: परशुराम चतुर्वेदी, (2013)]

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि दादूदयाल की मानवीय दृष्टि समाज के दुखों की जड़ व्यक्ति के भीतर मौजूद भ्रम में देखती है। वे मानते हैं कि जब मनुष्य जीवन के सही उद्देश्य को समझ लेता है, तब उसका व्यवहार समाज के लिए हितकारी बन जाता है (पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, 1995)। इसी कारण दादू बाहरी दिखावे से दूर, सादे और सच्चे जीवन को महत्व देते हैं। यह सोच व्यक्ति और समाज के बीच संतुलन बनाती है। दादूदयाल इस विचार को अपने पदों के माध्यम से सरल रूप में व्यक्त करते हैं। उनके पदों में आत्मबोध को सामाजिक दुख से मुक्ति का मार्ग बताया गया है। जैसा कि नीचे दिए गए पदों में स्पष्ट भी होता है –

"सखी सुहाग सेज सुख पावै, प्रीतम प्रेम बढ़ाइ।
दादू भाग बड़े पिव पावै, सकल सिरोमणि राइ ॥ ३ ॥"

(दादूदयाल, 1914, पृ. 57, पद संख्या – 138)

VI. दादूदयाल की वाणी का संत-साहित्य परंपरा में स्थान

दादूदयाल का स्थान संत-साहित्य परंपरा में उनके जीवन-आधारित संतत्व के कारण बनता है। उनकी वाणी विचार और व्यवहार के बीच दूरी को स्वीकार नहीं करती। वे मानते हैं कि संत वही है, जो-जो वह कहे उसे अपने जीवन में उतारे। उनकी साधना में उपदेश से अधिक जीवन की सच्चाई दिखाई देती है। यही कारण है कि उनकी वाणी लोकमानस को भरोसे के साथ स्वीकार्य होती है। संत-परंपरा में यह दृष्टि उन्हें आचरण-प्रधान संत के रूप में पहचान दिलाती है, जहाँ कथन और कर्म एक ही धरातल पर खड़े दिखाई देते हैं। इस संदर्भ में आलोचक कहता भी है कि –
"दादू जी जीवन में सत्य के उपासक थे। उन्होंने कथनी और करनी के भेद को स्वीकार नहीं किया। वे यह चाहते थे कि जो कुछ भी कहा जाए, उसे किया भी जाए।"

(स्रोत: रविन्द्र कुमार सिंह, 2005, पृ. 96)

इसी जीवनगत प्रामाणिकता के कारण दादूदयाल भक्ति आंदोलन की व्यापक परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते हैं। उनकी वाणी निर्गुण भक्ति को साधारण जन के अनुभव से जोड़ती है। उन्होंने भक्ति को किसी संकीर्ण धार्मिक ढाँचे में नहीं बाँधा। उत्तर भारत में भक्ति चेतना को सामाजिक आधार देने में उनकी भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई देती है (पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, 1995)। उनकी वाणी से भक्ति केवल साधना न होकर जीवन की दिशा बन जाती है। इसी व्यापक प्रभाव के कारण उनका मूल्यांकन अन्य महान संतों के समकक्ष किया गया है। इस संदर्भ में वासुदेव सिंह जी का निम्नलिखित कथन उल्लेखनीय हैं –

"उत्तरी भारत में भक्ति भाव को प्रतिष्ठापित करने में

दादू का महत्व कबीर व नानक के समान है।"

(स्रोत: वासुदेव सिंह, 2001, पृ. 252)

संत-साहित्य परंपरा में दादूदयाल की पहचान उनकी संतुलित और मानवीय दृष्टि से निर्मित होती है। वे समाज से कटने की बजाय समाज को भीतर से बदलने की बात करते हैं। उनकी वाणी आत्मबोध को सामाजिक जिम्मेदारी से जोड़ती है (शारिकाशा पाण्डेय, 1962)। इसी कारण उनकी साधना व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं रहती। संत-परंपरा में यह दृष्टि उसे जीवंत और निरंतर बनाए रखती है। दादूदयाल का संतत्व जीवन में सत्य को व्यवहार के रूप में देखने की चेतना से आकार लेता है।

VII. दादूदयाल की वाणी और समकालीन समाज : भाषिक चेतना के वर्तमान आयाम

दादूदयाल की वाणी आज के समाज में इसलिए महत्त्वपूर्ण लगती है क्योंकि उसकी भाषा मनुष्य की भीतरी उलझनों से सीधे बात करती है। यह भाषा दिखावे से दूर और जीवन के अनुभवों पर आधारित है। आज के समय में, जब शब्दों का प्रयोग अक्सर प्रभाव दिखाने के लिए होता है, तब दादू की वाणी आत्मचिंतन की ओर ले जाती है (रामकुमार वर्मा, 2015)। वे भाषा को केवल बोलने का साधन न मानकर उसे जीवन को समझने का माध्यम बनाते हैं। उनकी वाणी मनुष्य को अपने व्यवहार और सोच पर विचार करने के लिए प्रेरित करती है। इसी कारण आधुनिक समाज में भी उनकी भाषा अर्थपूर्ण बनी हुई है (हजारी प्रसाद द्विवेदी, 1942)। समकालीन जीवन की इन्हीं स्थितियों में दादूदयाल की वाणी की भूमिका को नीचे दी गई तालिका के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है –

तालिका 02: दादूदयाल की वाणी और समकालीन समाज में भाषिक चेतना के प्रभाव

समकालीन स्थिति	दादूदयाल की वाणी की भूमिका	सामाजिक प्रभाव
भाषिक टकराव	शांत और संयत भाषा	संवाद की संभावना
आत्मकेंद्रित सोच	आत्मबोध पर ज़ोर	सामाजिक जिम्मेदारी
संबंधों में दूरी	संवेदना की भाषा	मानवीय निकटता
नैतिक भ्रम	स्पष्ट जीवन-दृष्टि	व्यवहारिक संतुलन

[स्रोत: शारिकाशा पाण्डेय, (1962)]

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि दादूदयाल की वाणी आज के समाज में भाषिक संतुलन बनाए रखने में सहायक है। उनकी भाषा व्यक्ति को समाज से अलग करने की बजाय उसे उसके कर्म और जिम्मेदारी के साथ जोड़ती है (वासुदेव सिंह, 2001)। आज के समय में, जहाँ संवाद की जगह तुरंत प्रतिक्रिया अधिक देखने को मिलती है, वहाँ दादू की वाणी धैर्य और समझ का महत्व बताती है। यह दृष्टि सामाजिक तनाव को कम करने में मदद करती है। उनकी भाषा समकालीन मनुष्य को अपने समय से सवाल करने का नैतिक साहस देती है (नन्द किशोर पांडेय, 2024)। साथ ही, यह वाणी व्यक्ति को भीतर से जागरूक बनाती है। इसी चेतना के माध्यम से समाज में सकारात्मक परिवर्तन की संभावनाएँ जन्म लेती हैं।

VIII. निष्कर्ष और सुझाव

इस शोध-पत्र से स्पष्ट होता है कि दादूदयाल की वाणी लोकभाषा और प्रतीकों के माध्यम से जनचेतना को जाग्रत करने का प्रभावशाली साधन है। उनकी भाषा शास्त्रीय जटिलताओं से मुक्त रहकर जनसामान्य के अनुभव, पीड़ा और विवेक से सीधा संवाद स्थापित करती है। दादू के यहाँ प्रतीक मात्र अलंकार न होकर सामाजिक यथार्थ और मानवीय मूल्यों की व्याख्या के साधन बनते हैं। उनकी वाणी में भाषा और भाव का संतुलन साधारण व्यक्ति को भी आत्मचिंतन की ओर प्रेरित करता है। लोकभाषा के प्रयोग से उनकी अभिव्यक्ति जनजीवन की वास्तविकताओं से गहराई से जुड़ती है। इस प्रकार दादू की भाषिक दृष्टि भक्ति को सामाजिक चेतना से जोड़ते हुए एक व्यापक मानवीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

आगे भविष्य में दादूदयाल की वाणी का तुलनात्मक अध्ययन अन्य निर्गुण संतों की भाषा और उनकी प्रतीक-योजना के संदर्भ में किया जा सकता है। इससे लोकभाषा की भूमिका तथा जनचेतना के स्वरूप को अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य प्राप्त होगा। दादू की वाणी को समकालीन सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में पढ़ने की संभावनाएँ भी विद्यमान हैं, जिससे उसकी वर्तमान प्रासंगिकता और स्पष्ट हो सकेगी। पाठ्यक्रमों में दादू की भाषा को केवल धार्मिक अभिव्यक्ति न मानकर सामाजिक चेतना के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए। साथ ही, उनकी प्रतीकात्मक भाषा के भाषा वैज्ञानिक पक्ष पर स्वतंत्र शोध किया जा सकता है। ऐसे अध्ययन हिंदी साहित्य में लोकभाषा और जनसंवाद की परंपरा को नई दिशा प्रदान कर सकते हैं।

संदर्भ सूची

[1] वर्मा, रामकुमार. (1914). “दादू दयाल की वाणी, पहला भाग, जीवन-चरित्र सहित”. इलाहाबाद: वेकवेल्डियर प्रेस.

[2] द्विवेदी, हजारी प्रसाद. (1942). “हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास”. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

[3] चौबे, निलोचन नारायण. (1952). “हिन्दी संत साहित्य”. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

[4] पाण्डेय, शारिकाशा. (1962). “संत साहित्य परिभाषिक शब्दावली”. वाणी प्रकाशन.

[5] त्रिपाठी, चंद्रिका प्रसाद. (1964). “श्री स्वामी दादू दयाल की वाणी”. अजमेर: युगलप्रकाशक.

[6] सिंह, केशव प्रसाद. (1971). “दादू-पंथ एवं उसके साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन”. वाराणसी: काशी विद्यापीठ.

[7] बड़थ्वाल, पीतांबरदत्त. (1995). “हिन्दी काव्य की निर्मिति धारा”. नई दिल्ली: तक्षशिला प्रकाशन.

[8] स्वामी, नारायण. (1998). "श्री दादू-वाणी". जयपुर: दादू दयाल महासभा.

[9] सिंह, वासुदेव. (2001). "हिन्दी संत-काव्य: सामाजिक अध्ययन". वाराणसी: काशी विद्यापीठ.

[10] देवी, आशा. (2003). "संत दादू दयाल के काव्य में अध्यात्म-तत्त्व". दिल्ली: वक्रतुंड प्रकाशन.

[11] चतुर्वेदी, परशुराम. (2013). "संत-काव्य". किताब महल.

[12] शुक्ल, रामचन्द्र. (2014). "हिन्दी साहित्य का इतिहास". नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.

[13] रामस्वरूप. (2014). "दादू दयाल". नई दिल्ली: साहित्य अकादमी.

[14] वर्मा, रामकुमार. (2015). "हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास". नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन.

[15] पांडेय, नन्द किशोर, मिश्र, नरेन्द्र, एवं त्रिपाठी, अमरेन्द्र. (2024). "दादूदयाल और हमारा समय". नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.

[16] दादूदयाल. (1914). "दादू दयाल की वाणी: दूसरा भाग (पद)". इलाहाबाद: बेलवेदीयर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स.

[17] सिंह, रविन्द्र कुमार. (2005). "दादू काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता". वाणी प्रकाशन.